त्रैतवाद

लेखक/सम्पादक

डॉ.त्रिलोकीनाथ क्षत्रिय

अक्षरांकन

ब्र.अरुणकुमार "आर्यवीर"

प्रकाशन तिथि : कार्तिक २०६२/नवम्बर २००५
प्रथमबार १००० प्रतियाँ, मूल्य : पढ़ें-पढ़ाएँ

प्रकाशक

आर्य समाज

वृत्तखण्ड ६, भिलाई नगर, जि.दुर्ग, छत्तीसगढ़

दूरभाष : (०७८८) ५०४०१७८, २३९२७४३

डॉ.त्रिलोकीनाथ क्षत्रिय "भापा"

पी.एच.डी.(वेद), एम.ए.(आठ विषय), सत्यार्थ शास्त्री, बी.ई., एल.एल.बी., डी.एच.बी., पी.जी.डी.एच.ई., एम.आई.ई., आर.एम.पी. (१०७५२)

जन्म : ५ सितम्बर १९४०(३७) — गुजराँवाला पंजाब (वर्तमान पाकिस्तान)

प्रणेता : (१) ससाहित्य : अ) सकविता : आप्ता, भजन, ब) सकहानी : वीर अभिमन्यु निश्चित्त: मरेगा, कल्पि, स) सनिबन्ध : मृत्यु, सांतसा पत्रिका में छपे निबन्ध तथा अन्य, द) ससूत्र साहित्य : गृहणी सफलता सूत्र, परीक्षा सफलता सूत्र, सफल जीवन साथी सूत्र तथा अन्य, ई) सचिन्तन : घेरों को घेर दो उन्मुक्त हो ही जाओगे, अगाओ की किताब बेकुबा, अतिआत्म साधना सतयुग सम्भव है तथा अन्य। **(२) सइंजीनियरिंग :** अ) सांतसा इंजीनियरिंग, १) संस्कार इंजीनियरिंग, २) सांतसा प्रबन्धन, ३) सइंजीनियरिंग व्यवहार प्रयोग भूतपूर्व मुख्य अभियन्ता (परियोजनाएं रूप में), एवं अन्य विधाएं। **(३) ससंस्था :** अ) प्रसांत संसद, ब) नव्य संसद, स) हवन संसद, द) आर्य संसद, ई) सुस्वाप संसद। **फ**) संस्कृति संसद। **(४) अमात्रा काव्य :** हव्य कव्य। **(५) प्रजतन्त्र। (६) सशिविर विधा :** अ) सखेल—कूद — करीब १५० केन्दों में ब) विभिन्न बाल संस्कार शिविर। **(७) सचिकित्सा :** १) अतिस्पर्शन, २) एकी, ३) मम न मम, ४) सर्व चिकित्सा। **(८) ससाधना :** अति आत्म साधना, एकी या पूर्ण साधना, अगाओ साधना, स्वयम्भू साधना, मोक्ष यहीं पे सुलभ है साधना तथा अन्य साधनाएँ। **(९) वेदविद् विधा (एप्लाईड वेद)। (१०) सम्मान :** १) वेदविद्वान सम्मान (मुम्बई), २) श्रमिक साहित्य सम्मान, ३) उत्कृष्ट बुजुर्ग सेवा सम्मान (बाल मंच स्मुति नगर), ४) गुरुजी सम्मान (साईंस संस्थान) आदि। **(११) कुल प्रकाशित पुस्तकें :** करीब पैंतीस। **(१२) अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनारों में आलेख पठन चार। राष्ट्रीय सेमिनारों में आलेख पठन बारह।**

माता : स्व.लाजवन्ती। **पिता :** स्व.लाला लद्धाराम सखूजा। **गुरु :** भूरी नाई (हरिद्वार)। **सुपत्नी :** सुदेश (स्वदेश)। **सुपुत्र :** १) नमित, २) निचित। **सुपुत्री :** शुचि।

कन्सल्टेंसी : अध्यात्म संस्थान १४५, जुनवानी रोड़, स्मृतिनगर, भिलाई छ.ग. ४९००२०

पता : प्रसांत भवन, बी ५१२, सड़क ४, स्मृतिनगर, भिलाई, जि.दुर्ग, छत्तीसगढ़ ४९००२०

दूरभाष : (०७८८) २३९२८८४

E-mail : triloki_nathkshatriya@yahoo.com

Website : www.santasa.com

त्रैतवाद

आज से एक अरब, छियानबे करोड़, आठ लाख, तिरपन हजार, एक सौ पांच वर्ष पूर्व इस सृष्टि की प्रलयावस्था (अव्यक्तावस्था) थी। तब अनेक जीवात्माएँ गहन सुषुप्ति (मूर्च्छावत) अवस्था तथा कुछ जीवात्माएँ मोक्षावस्था में रहती थीं। प्रकृति सत, रज, तम की साम्यावस्था में रहती है तथा ब्रह्म अज एकपाद् रूप में सर्वत्र रहता है। प्रलयावस्था की समाप्ति पर अज का ईश्वर रूप ईक्षण करता है तथा उत्पत्ति की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। सर्वप्रथम सत, रज, तम में ईक्षण से ऊर्जा स्फोटों से महत्तत्व नामक तत्व का विकास होता है। यही तत्व तरंग रूप में अहंकार रूप में परिवर्तित होता जीवात्मा की अभिव्यक्ति का साधन बनता है। अहंकार की आघेर सीमा को अन्तःकरण कहते हैं। इसमें स्व, चित, धी, बुद्धि मन प्रकम्पन रूप में ब्रह्म नियमानुरूप आबद्ध होते हैं। ये पांच अहंकार सहित आत्मा के करण हैं। इन्हें अन्तः संयुक्त होने के कारण अन्तःकरण कहते हैं। अन्तःकरणों के पश्चात् देव व्यवस्था सहित बाह्य करणों चतुः वाक्, त्रिहठ (इडा, पिंगला, सुषुम्णा) पंच प्राण और पंच ज्ञानेन्द्रियों, पंच कर्मेन्द्रियों का निर्माण हुआ। इसके समानान्तर पंच तन्मात्राओं तथा पंच स्थूल भूतों का विकास हुआ। आदि काल में अमैथुनी संसार बना तथा प्रवाह से मैथुनी विकास हुआ। वृक्ष सृष्टि उत्पत्ति का त्रैत सिद्धान्त है।

सृष्टि वृक्ष का धारण परमात्मा ने किया हुआ है। इसमें

सूर्य, चन्द्र, ग्रह, उपग्रह, गुरुत्वाकर्षणबद्ध नियमपूर्वक भ्रमण करते हैं। आकाशगंगाएँ, नीहारिकाएँ नियमित अपने पथ भ्रमण करती हैं। अथाह आकाश से लेकर सूक्ष्मतम परमाणु, क्वार्क, अयन, अल्पसत्व, महासत्व नियमबद्ध हैं। इस पूरी अवस्था में एक अस्तित्व अनियमित है, वह है आदमी। आखिर क्यों ? पूरी सृष्टि सत है, ऋत है। आदमी सत के साथ चित् है। सच्चित के साथ स्वतन्त्र है। कोई भी भला से भला बुरा से बुरा कर्म करने के लिए स्वतन्त्र है। साथ ही एकदेशीय अल्पज्ञ है। यह फल भोगने में परतन्त्र है। इसमें आनन्द का अभाव है। इस अभाव की पूर्ति के लिए यह सच्चिदानन्द (सत्-चित्-आनन्द) की ओर देखता है जो पूर्ण है, सर्वज्ञ है, सर्वदेशीय है। यह सृष्टि धारण का त्रैत सिद्धान्त है।

अक्षर शब्द कई-कई सिद्धान्तों का बीज शब्द है। इसमें 'अ' शब्द ब्रह्म या सच्चिदानन्द का प्रतीक है जो क्षर अर्थात् परिवर्तनशील नहीं है वरन एक ही सर्व शब्दों की अभिव्यक्ति का आधार है। 'क्षर' अर्थात् परिवर्तनशील यह सत या सृष्टि का नाम है जिसमें सारे परिवर्तन ब्रह्म या सतचित (जीव) करता है। तीसरी चीज अक्ष -र है। अक्ष नाम इन्द्रियों का है। 'र' अर्थात् रमण करना है। इन्द्रियों के माध्यम से रमण करनेवाला जीवात्मा सच्चित है। यह अक्षर शब्द द्वारा सिद्ध त्रैत है।

इस वैदिक त्रैतवाद का शास्त्रीय स्वरूप इस प्रकार है।

यह स्वरूप महर्षि दयानन्द का ईश्वर, जीव, प्रकृति सम्बन्धि आधार सिद्धान्त है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।। (ऋ.१/१६४/२०)

"प्रश्न- अनादि किसको कहते हैं और कितने पदार्थ अनादि हैं ?

उत्तर- ईश्वर जीव और जगत् का कारण ये तीन अनादि हैं।

प्रश्न- इसमें क्या प्रमाण है ?

उत्तर- द्वा सुपर्णा (ऋ.) शाश्वतीभ्यः समाभ्यः (यजु.)

अर्थ- (द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतना और पालनादि गुणों से सदृश (सयुजा) व्याप्य-व्यापक भाव से संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रतायुक्त सनातन अनादि हैं और (समानम्) वैसा ही (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्यरूप वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न-भिन्न हो जाता है, वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनों के गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि हैं (तयोरन्यः) इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है, वह इस वृक्ष रूप संसार में पाप-पुण्य रूप फलों को (स्वाद्वत्ति) अच्छे प्रकार भोक्ता है और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को (अनश्नन्) न भोक्ता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर प्रकाशमान् हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप हैं। तीनो अनादि हैं। (स.प्र. ८ समु.)

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः (यजु.) इस मन्त्र में भी जीवात्माओं को नित्य माना है। इसकी व्याख्या में महर्षि दयानन्द लिखते हैं- (शाश्वतीभ्य..) अर्थात् अनादि सनातन जीवरूप (प्रजारूप) प्रजा के लिए वेद द्वारा परमात्मा ने सत्यविद्याओं का बोध किया है। (स.प्र. ८ समु.)

"एक शरीर में जीवात्मा और परमात्मा का विधान और संग प्रतिपादन है। इससे जीव और ईश्वर को एक मानना केवल जंगली पुरुषों की कथा है। ऋषिमुनि विद्वानों की यह कथा नहीं।" (वेदान्तिध्वान्तनिवारण)

"तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति" इसमें भी जीव सुख-दुःख का भोक्ता और पाप-पुण्य का कर्ता सिद्ध होता है। अनुभव से ही जीवात्मा ही कर्ता और भोक्ता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि केवल इन्द्रिशराम होके विषयभोगरूप स्वमतलब साधने के लिए ही यह बात बनाई है कि जीव अकर्ता, अभोक्ता और पाप-पुण्य से रहित है। यह बात नवीन वेदान्ती लोगों की मिथ्या ही है।" (वेदान्तिध्वान्तनिवारण)

शांकर भाष्य से त्रैतवाद की पुष्टि-

इसी मन्त्र की मुण्डकोपनिषद् की व्याख्या में स्वामी शंकराचार्य भी लिखते हैं- "द्वा = द्वौ सुपर्णा = सुपर्णौ ..... सयुजा=सयुजौ सहैव सर्वदा युक्तौ सखाया = सखायौ समानाख्यानौ ..... तयोरन्यः एकः क्षेत्रज्ञो - पिप्पलं कर्मनिष्पन्नं सुख-दुःखलक्षणं फलं ..... स्वाद्वत्ति = भक्षयत्युपभुक्ते ..... अन्य इतर ईश्वरो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः सर्वज्ञो ईश्वरो नाश्नाति .

.... नित्यसाक्षित्वसत्तामात्रेण।।"

यहाँ जीव ईश्वर को नित्य तथा पृथक्-पृथक् स्वीकार किया गया है और दोनों का भेद भी किया है। एक जीव कर्मफल का भोक्ता है ईश्वर नहीं। ईश्वर नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाववाला व सर्वज्ञ है, जीव ऐसा नहीं है।

त्रैतवाद की पुष्टि में अन्य प्रमाण-

"अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः।

अजो ह्येको जुषमाणो ऽशेते जहात्येना भुक्तभोगामजोन्यः।।

यह उपनिषद् का वचन है। प्रकृति, जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी ये जन्म लेते। अर्थात् ये तीन सब जगत् के कारण हैं। इनका कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फँसता है और उसमें परमात्मा न फँसता और न उसका भोग करता है। (स.प्र. ८ समु.)

तीन कारणों की व्याख्या-

प्रश्न- जगत् के कारण कितने होते हैं?

उत्तर- तीन। एक निमित्त, दूसरा उपादान, तीसरा साधारण। निमित्त कारण उसको कहते हैं कि जिसके बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने, आप स्वयं नहीं बने, दूसरे को प्रकारान्तर बना देवे। दूसरा उपादान कारण उसको कहते हैं जिसके बिना कुछ न बने, वही अवस्थान्तर रूप होके बने

और बिगड़े भी। तीसरा साधारण कारण उसको कहते हैं कि जो बनने में साधन और साधारण निमित्त हो ..... जैसे घड़े को बनानेवाला कुम्हार निमित्त, मिट्टि उपादान और दण्ड चक्रादि सामान्य निमित्त। इन तीन कारणों के बिना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और बिगड़ सकती है।।(स.प्र. ८ समु.)

जिसका आदि अर्थात् आरम्भ न हो उसको अनादि कहते हैं। जो गैग पैदा शुदा हो (अरबी ज़बान में) उसको अजली कहते हैं। जो पदार्थ अनादि होते हैं वही अनन्त होते हैं। न वे पैदा होते हैं और न नष्ट होते हैं। इनको दार्शनिक परिभाषा में नित्य कहते हैं। **सदकारणवन्नित्यम्** (वैशेषिक ४/१/१) जिसका सद्भाव हो और जिसका अन्य कारण न हो उसको नित्य कहते हैं। जिसका वजूद (अस्तित्व) बिला किसी मुजिद (कर्ता) के हमेशा से हो उसको वाजिबुलवजूद (नित्य) कहते हैं।

अनादि पदार्थ दो प्रकार के होते हैं। एक अपराश्रित अनादि और दूसरा पराश्रित अनादि। अपराश्रित अनादि को स्वरूप से अनादि कहते हैं। उसके स्वरूप में न कोई विकार होता है न परिणाम और न उसका अस्तित्व किसी अन्य पर अवलम्बित होता है। वह स्वयम्भू होता है। और पराश्रित अनादि अपराश्रित अनादि पर अवलम्बित होता है। वह स्वतन्त्र नहीं होता। जैसे अनादि काल से प्रकृति पर डाला हुआ ईश्वर की क्रिया का प्रभाव ईश्वर पर (जो स्वरूप से

अनादि है) अवलम्बित है स्वतन्त्र नहीं है। ईश्वर की दी हुई क्रिया से हो रहा है स्वयं नहीं। यदि ईश्वर न दे तो वह न हो। परन्तु वह प्रभाव परतन्त्र होते हुए अनादि भी है। क्योंकि जब से ईश्वर है तब से प्रकृति पर पड़ रहा है। इसलिए यह प्रभाव पराश्रित अनादि कहलाएगा।

जिस समय कर्ता क्रिया देता हैउसी क्षण में उसका प्रभाव अन्य पदार्थ पर पड़ता है। इन दोनों में कुछ कालभेद नहीं होता। जैसे अँगुठी वाली ऊँगली को हिलाने से अँगुठी और ऊँगली साथ-साथ हिलती है आगे-पीछे नहीं। और इंजन के चलने से गाड़ियाँ भी साथ-साथ चलती हैं। इसी तरह ईश्वर जो सर्वत्र व्यापक है उसकी क्रिया का प्रभाव भी उसकी क्रिया के साथ-साथ पड़ता है। काल का आगा-पीछा नहीं होता। काल की अपेक्षा से उत्पादक और उत्पन्न समान होते हैं। केवल क्रिया का कारण होने से उत्पादक स्वाधीन होता है और उत्पन्न पराधीन होता है।

ईश्वर अनादि काल से कर्ता होने के कारण उसका कर्म भी उसके आश्रित होने से काल की अपेक्षा उसी के समान अनादि होता है। "प्रवाह से अनादि", "पराश्रित अनादि" का ही एक भेद है। ईश्वर की क्रिया के दो फल होते हैं। एक सृष्टि, दूसरा प्रलय। सृष्टि और प्रलय एक दूसरे से विरुद्ध हैं। जब सृष्टि होगी तब प्रलय नहीं हो सकती। जब प्रलय होगी तब सृष्टि नहीं हो सकती। ये दोनों आगे-पीछे होती रहती हैं। संकल की कड़ियों की तरह इन दानों का होते

रहना प्रवाह से अनादि कहलाता है।

प्रवाह शब्द का अर्थ लगातार बहना, अटूट परम्परा, उर्दू में सिलसिला या जंज़ीर कह सकते हैं। अनादि पदार्थ न उत्पन्न हो सकते हैं और न विनष्ट हो सकते हैं। वे निरवयव (मुजर्रब या ग़ैरमुरक्कब) होने से उत्पत्ति और विनाश से मुक्त रहते हैं। संयोग और वियोग से वस्तु बना और बिगड़ा करती है। वे न संयोग से बने हैं और न वियोग को स्वीकार करते हैं, इसलिए नाशवान् नहीं होते।

निरवयव पदार्थ दो तरह के होते हैं। सबसे छोटा और सबसे बड़ा जिनको शास्त्र में अणु और महत् कहते हैं। ये दोनों अवयवरहित होते हैं। सबसे छोटा होने का अर्थ ही यह है कि जिसका आगे विभाग नहीं हो सकता। और जब विभाग नहीं हो सकता तो उसी रूप में रहने में विनाशरहित ही कहलाएगा। इसी प्रकार से सबसे बड़े का भी विभाग नहीं हो सकेगा। क्योंकि विभाग करने के लिए बीच में खाली जगह चाहिए। सबसे बड़ा आकाश में सर्वत्र होगा और सर्वव्यापक होगा। सर्वव्यापक में खाली जगह होना सम्भव नहीं अतः सबसे बड़ा भी अविनाशी ही होगा।

उपर्युक्त दोनों के बीचवाला नाशवान होगा उसको शास्त्र में मध्यम परिमाणवाला कहते हैं। जिस पदार्थ में लम्बाई, चौड़ाई व गहराई हो वह मध्यम परिमाणवाला कहलाता है। जिसमें ये तीनों परिणाम नहीं होते वे अणु और महत् परिमाणवाले कहाते हैं। सबसे छोटे में परिमाण तो होता है

परन्तु वह कई परिमाणों से मिलकर पैदा नहीं होता। वह तो कारणरूप परिमाण होता है, जो अभेद्य होता है। सबसे छोटा पदाथ न नापा जा सकता है न तोला जा सकता है। क्योंकि उससे कोई छोटा पदार्थ होता ही नहीं जो कि उसको नापे या तोले। हम मन को सेरों से तोलते हैं, सेर को तोलों से, तोले को माशों से, माशे को रत्तियों से, रत्ति को चावलों से, चावल को पोश्त के दानों से, परन्तु पोश्त के दानों को बिना तुला ही रखते हैं। क्योंकि व्यवहार में उससे छोटा बाट है ही नहीं। अतः पोश्त का दाना बेतोल बाट है जो अपने जैसे कई दानों को मिलाकर बड़े बाटों को उत्पन्न करता है। परन्तु स्वयं इस तरह उत्पन्न नहीं होता। इसलिए ऐसे पदार्थों को जो नापतौल से परे हो व्यवहार में परिमाणरहित ही कहते हैं। Geometry (रेखागणित) में इसीलिए Point (परमाणु) का लक्षण किया है कि Point is that which has a position but no magnitude. अर्थात् बिन्दु (परमाणु) वह है जिसका अस्तित्व (कारण रूप परिमाण) तो होता है परन्तु कार्यरूप परिमाण– लम्बाई, चौड़ाई और गहराई नहीं होती। परमाणु को अरबी भाषा में 'ज़र्रा' और दार्शनिक परिभाषा में "जुजे या यतजज्जा" कहते हैं। अर्थात् वह जुज जिसका कोर्द जुज न हो सके।

भौतिक पदार्थ चाहे सावयव हों या निरवयव दोनों ही अपने–अपने योग्य स्थान घेरते हैं। स्थान घेरना विभाग का कारण नहीं है। केवल सावयव होना विभाग कार कारण है।

क्योंकि सावयव में आकाश होता है। निरवयव में में आकाश नहीं होता इसलिए उसका विभाग नहीं हो सकता। परमाणु सावयव नहीं होता इसलिए उसका विभाग भी नहीं होता।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में प्रलयावस्था का वर्णन करते हुए ऋषि दयानन्द ने लिखा है कि उस समय केवल परमात्मा का सामर्थ्य विराजमान था, और आकाश, प्रकृति, परमाणु आदि नहीं थे। सामर्थ्य शब्द का अर्थ है– "समान अर्थ का भाव हो जिसमें" अर्थात् परमात्मा की जगदुत्पादक शक्ति निमित्त कारण के रूप में जिस अर्थ (मकसद) को पूरा करती है उसी को उपादान कारण के रूप में प्रकृति पूरा करती है। दोनों में समान अर्थ का भाव है। इसलिए जगत के कारण को सामर्थ्य नाम से लिखा गया है। जैसे कुम्हार जिस घड़े को बनाता है उसी घड़े को दण्ड, चक्र और मिट्टी भी बनाते हैं। अर्थात् दण्ड, चक्र और मिट्टी में और कुम्हार के कर्तृत्व में समान अर्थ का भाव है इसलिए इनको सामर्थ्य कह सकते हैं। Apte ने सामर्थ्य का अर्थ Sameness of aim or object लिखा है। अर्थात् लक्ष्य अथवा उद्देश्य की समानता। अब आपने समझ लिया होगा कि ऋषि दयानन्द ने इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखा हैवह कितना युक्तियुक्त और सार्थक है।

वेदादि शास्त्रों में जगत् के कारण नाम तो बहुत हैं परन्तु मैं केवल २१ नाम लिखाता हूँ। स्वधा, तम, सलिल, अजा, पतत्री, पिशङ्गिला, वृक्ष, सत् असत्, तन्तु, प्रकृति,

प्रधान, अव्यक्त, अव्याकृत, माया, शक्ति, सामर्थ्य, अप्रकेत्य, परमाणु, सम्पत्ति, सामग्री। इनमें पहले १० नाम वेद के हैं। और शेष अन्य शास्त्रों के हैं। प्रकृति और जीव के अनादि अनुत्पन्न होने में वेदों के प्रमाण-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो ऽभिचाकशीति।।

(ऋग्वेद १/१६४/२०)

द्वा = दो (जीव और ईश्वर)
सुपर्णा = चेतनता और पालनादि गुणों के सदृश
सयुजा = व्याप्य-व्यापकभाव से संयुक्त
सखाया = परस्पर मित्रतायुक्त (सनातन अनादि हैं)
समानम् = वैसा ही
वृक्षम् = अनादि मूल रूप कारण और शाखा रूप कार्य युक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न-भिन्न हो जाता है।
परिषस्वजाते = उसका दोनों सब ओर से आश्रय करते हैं।
तयोः = उनमें से
अन्यः = एक जीव
पिप्पलम् = परिपक्व फल या पाप-पुण्य से पैदा हुए सुख-दुःख रूप फल को
स्वादु = स्वादुपन से
अत्ति = खाता है।

अनश्नन् = उक्त भोग न करता हुआ
अन्यः = दूसरा परमेश्वर
अभिचाकशीति = सब ओर से देखता है।

जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप तीनों अनादि हैं। सत्यार्थ प्रकाश व वेदभाष्य यजुर्वेद अध्याय १३ मन्त्र ३ का भाष्य करते हुए स्वामी जी महाराज 'असतः' का अर्थ यह करते हैं-

(असतः) विद्यमनास्यादृश्याव्यक्तस्य कारणस्य। अविद्यमान, अदृश्य अव्यक्त कारण का।

ऋग्वेद १/६१/५ में 'सत्पति' का अर्थ करते हुए लिखते हैं-

(सत्पतिः) सतोऽविनाशिनः कारणस्य विद्यमानस्य कार्य्यस्य सत्यपथ्यकारिणां वा पालकः अविनाशी कारण का, विद्यमान कार्य जगत का या ठीक-ठीक पथ्य करनेवाले जनों का पालनकर्ता।

ऋग्वेद १/६१/५ **(सत्पतिम्) यः सतां नाशरहितानां प्रकृत्यादि कारणद्रव्याणां पतिः स्वामी तमीश्वरम्।** जो नाशरहित प्रकृत्यादि कारण द्रव्यों का स्वामी है उस ईश्वर को।

यजु.२३/५६ - **'अजा'** = जन्मरहित प्रकृतिः

यजु.२३/५५ - **'पिशङ्गिला'** = सर्वषामवयवानाम्

यजु.१७/१६ - निगलिकाः विश्व के रूप को प्रलय समय में निगलनेवाली। **'पतत्रैः' पतनशीलैः परमाण्वादिभिः** क्रियाशील परमाणु आदि से।

यजु.२३/५४ - **(अविः) रक्षिका प्रकृतिः** रक्षा करनेवाली प्रकृति। **(अमर्त्यः जीवः)** अनादि होने से मृत्यु रहित जीव **(मर्त्येन)** मरणधर्मा शरीर के साथ **(सयोनिः)** एक स्थानी होता हुआ **(मृतस्य)** मरणस्वभाव वाले जगत के बीच **(आचरति)** आचरण करता है। ऋ.१/१६४/३०

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः यजु.४०/८

सनातनीभ्यो ऽनादिस्वरूपाभ्यः स्वस्वरूपेणोत्पत्तिविनाशरहिताभ्यः प्रजाभ्यः। सनातन अनादि स्वरूप अपने-अपने स्वरूप से उत्पत्ति और विनाशरहित प्रजाओं (जीवों) के लिए।

जगत् के उपादान कारण के लिए प्रयुक्त हुए शब्दों के अर्थ

प्रकृतिः = जो कार्यों का सबसे पहला कारण है। (पद्मचन्द्र कोष)

प्रधान = जो सबसे पहले कार्य जगत का निर्माण करे। (पद्म.कोष)

अव्यक्त = अप्रकट, अप्रकाशित, सूक्ष्म। (पद्म.कोष)

अव्याकृत = अप्रकट, अप्रकाशित, सूक्ष्म से बना हुआ।

माया = विलक्षण शक्ति, Extra-ordinary power (Apte)

शक्ति = न्याय आदि में कहा हुआ, कारण में रहनेहारा कार्य को उत्पन्न करने लायक एक प्रकार का धर्म। (पद्म.कोष)

सामर्थ्य = समान अर्थ का जिसमें भाव हो। शक्ति

स्वधा = स्वकीयं अस्तित्वं धारयतीति स्वधा। जो अपने आप को कायम रख सके।

तम = अन्धकार से युक्त या अन्धकार।

अप्रकेत्य = न जानने योग्य।

सलिल = गड्डमड्ड अथवा साम्यावस्था।

अजा = जन्मरहित प्रकृति। यजु.२३/५६

पतत्री = पतनशील। यजु.१६/१६

परमाणु = अत्यन्त छोटा या सूक्ष्म।

सम्पत्ति = दौलत, खजाना।

सामग्री = कारण समूह (Apte)

पिशङ्गिला = सर्वषामवयवानां निगलिका। यजु.२३/५५

वृक्ष = यो वृश्च्यते छिद्यते तं कार्यकारणाख्यं वा। जो काटा और छेदा जा सके कार्य-कारण नाम वाला।

सत् = त्रिकालाबाध्य।

तन्तु = तनोति विस्तृणोतीति तन्तु। जो विस्तार करे।